आर्य, सनातन और हिन्दू धर्म

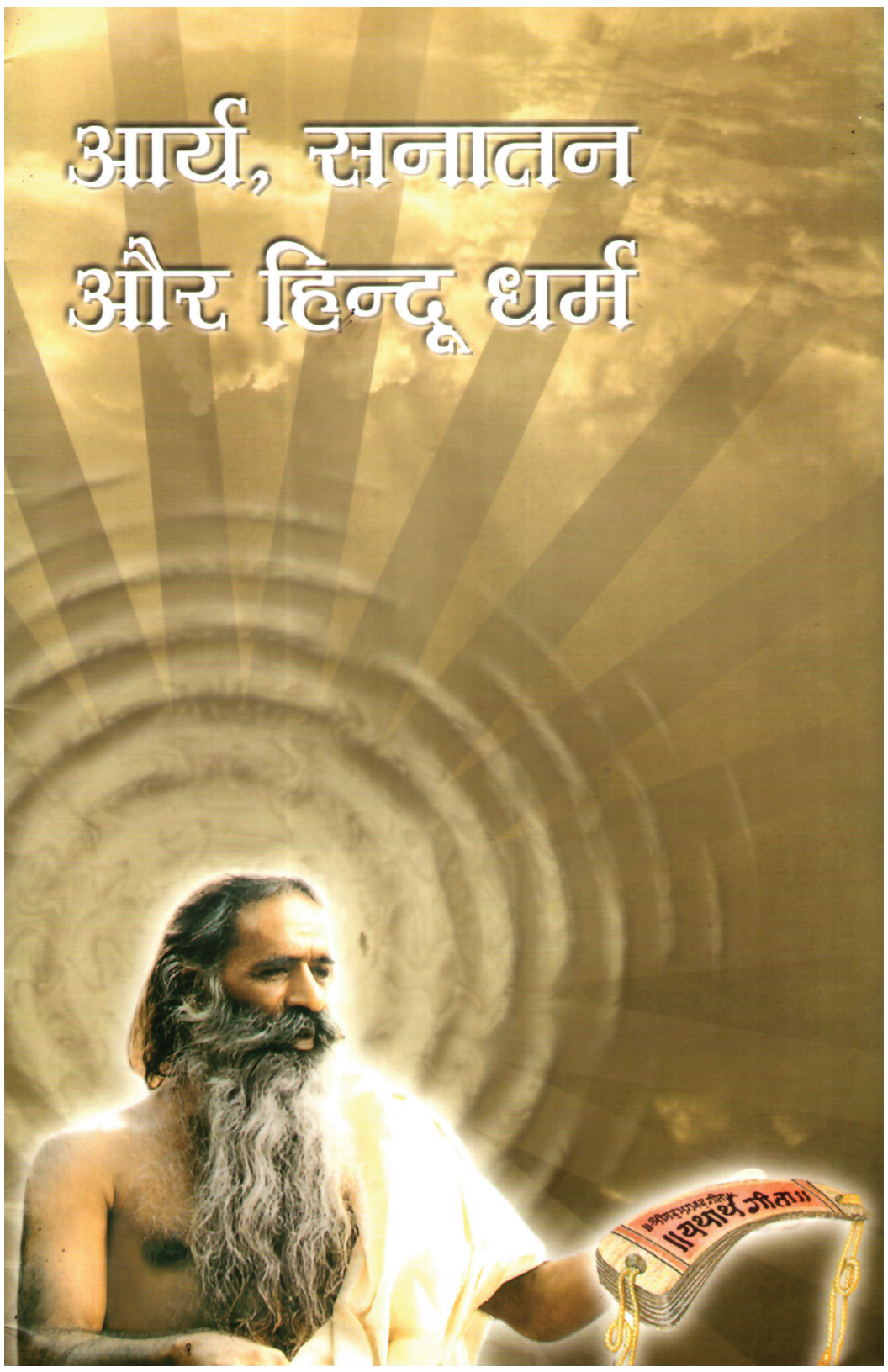

।। ॐ नमः सद्गुरुदेवाय ।।

* आर्य, सनातन और हिन्दू-धर्म
* धर्म-परिवर्तन होता ही नहीं

श्री परमहंस आश्रम परिसर, शक्तेषगढ़, मिर्जापुर, उत्तर प्रदेश में दिनांक 4 अप्रैल 2011, सोमवार के प्रातःकालीन सत्संग में एक श्रद्धालु ने प्रश्न किया– ''महाराज जी! आये दिन हिन्दुओं के धर्म-परिवर्तन के समाचार सुनने को मिलते हैं। कृपया बतायें इस समस्या का समाधान क्या है?''

पूज्य महाराजश्री ने बताया कि आश्रमीय साहित्य में यत्र-तत्र इस प्रकरण का उल्लेख है। परमपूज्य गुरुदेव श्री परमहंस जी महाराज के समक्ष भी ऐसा ही एक प्रश्न आया था कि 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में नहीं पाया जाता। यह नामकरण तो अरब आक्रामकों द्वारा सिन्धु नदी के तटवर्ती निवासियों के लिए प्रयुक्त एक घृणात्मक सम्बोधन था, जो धीरे-धीरे यहाँ के निवासियों की पहचान के रूप में प्रचलन में आ गया तो हिन्दू-धर्म सनातन-धर्म कैसे है?

उस समय गुरु महाराज ने उन्हें बताया था– ''नहीं हो! यह नाम अरब आक्रमणकारियों की देन नहीं बल्कि उनसे भी प्राचीन है; क्योंकि भारत के सुदूर वनप्रान्तों, आसाम और ब्रह्मा (वर्मा) इत्यादि क्षेत्रों, जहाँ इस्लाम का प्रचार-प्रसार और प्रशासन व्यवस्था नहीं थी, वहाँ भी पूर्ण श्रद्धा से स्वीकृत है।'' *(देखें– 'जीवनादर्श एवं आत्मानुभूति', पृष्ठ–405, संस्करण– सन् 2006)*

यह सच है कि धार्मिक आधार पर गठित संगठन भी इस प्रश्न का उत्तर देने से कतराते हैं कि हिन्दू किसे कहते हैं? उनका मानना है कि इस प्रश्न

की निर्विवाद व्याख्या आज तक नहीं हुई और न होनी ही उत्तम है; क्योंकि यदि कहें कि वर्णाश्रम व्यवस्था मानने वाला हिन्दू है तो हिन्दुओं में बहुत से ऐसे हैं जो वर्ण-व्यवस्था, जाति-पाँति और छुआछूत नहीं मानते। यदि कहा जाय 'जो वेद-शास्त्रों को माने वही हिन्दू' तो बौद्ध, जैन इत्यादि वेदों को प्रमाण नहीं मानते। यदि कहें 'जो अवतार माने वही हिन्दू' तो हिन्दुओं में ही बहुत से पन्थ अवतारों में श्रद्धा नहीं रखते। यदि यह कहा जाय कि 'चोटी, धोती या यज्ञोपवीत धारण करने वाला हिन्दू है', तब भी बहुत से प्रान्तों में ऐसा नहीं करते और अपने को हिन्दू कहते हैं। शवदाह करने वाले को हिन्दू कहें तो बहुत से हिन्दू जल-प्रवाह करते या समाधि बनाते देखे जाते हैं। यदि भारत के निवासियों को हिन्दू कहा जाय तो विदेशों में रहने वाले इससे वञ्चित रह जायेंगे। वास्तव में हिन्दू एक संस्कृति है, जिसमें हर तरह की उपासना की स्वतन्त्रता और सहनशीलता है। अच्छा तो यह होगा कि जो कोई अपने को हिन्दू कहता है, हिन्दू है। किन्तु ये सब भ्रान्तियाँ हैं। कहना न होगा कि इसी तरह हिन्दूधर्म के बारे में कोई ज्ञान उन्हें भी नहीं है जो वरिष्ठ पदों पर रह चुके हैं। कुछ वर्ष पहले ईसाइयों के धर्मगुरु भारत पधारे। उनके स्वागत में समूचा तन्त्र उमड़ पड़ा। वापसी में वायुयान में बैठते समय उन्होंने तत्कालीन प्रधानमंत्री से पूछ लिया– यह हिन्दू क्या होता है? उन्हें उत्तर मिला– हिन्दू एक विचार है! विचार तो क्षण-क्षण पर बदलते ही रहते हैं। क्या इतना ही अस्थिर है हिन्दू-धर्म?

वस्तुतः प्राचीन भारत में शुंगकाल से भारत की मूलभाषा संस्कृत, धर्मशास्त्र गीता और गौरवपूर्ण इतिहासग्रन्थ महाभारत के पठन-पाठन पर कड़े प्रतिबन्ध लग जाने के कारण इन भ्रान्तियों ने जन्म लिया कि हिन्दू शब्द कहाँ से आया, आर्य कहाँ से आये और हिन्दू-धर्म सनातन कैसे?

पहले पूरे भारत में बोलचाल की भाषा संस्कृत थी; किन्तु दो हजार वर्ष से गीता के एक श्लोकांश **'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं'** को लेकर तत्कालीन व्यवस्थाकारों ने प्रचारित किया कि चार वर्णों की संरचना भगवान ने स्वयं की

और इस प्रकार समाज में घृणा और फूट की दीवार खड़ी कर दी। कदाचित् गीता पढ़कर कोई समझ न जाय कि भगवान श्रीकृष्ण ने मनुष्यों को नहीं बल्कि चिन्तन-कर्म को चार भागों में बाँटा। अतः उन्होंने व्यवस्था दी कि गीता घर में रखो ही मत; नहीं तो लड़का संन्यासी हो जायेगा। गीता महाभारत का एक अंश है, इसलिए उन्होंने कहा– महाभारत मत पढ़ना, मत सुनना; नहीं तो घर में महाभारत जैसा विनाश हो जायेगा। महाभारत पूर्वजों की गौरवगाथा है। वह शौर्य को जगाता है। यदि शौर्य जग जायेगा तो शोषित वर्ग हमला कर सकता है, इसलिए उनसे शस्त्र छीन लिया गया कि शस्त्र केवल क्षत्रिय उठा सकता है। अपनी वस्तु की रक्षा में ब्राह्मण भी उठा सकता है; किन्तु वैश्य और शूद्र शस्त्र नहीं रख सकते। शिक्षा, शास्त्र, शस्त्र और इतिहास पर प्रतिबन्ध लग जाने से भारत अँगूठा छाप हो गया, समाज बिखर गया और इसी व्यवस्था को लोगों ने सनातन-धर्म कहकर चला दिया, स्व-धर्म कहकर चला दिया और अब भारत भूल गया कि वह हिन्दू क्यों है! जबकि–

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक्।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः॥ *(गीता, 13/4)*

ऋषियों ने इस गीताशास्त्र का विधिवत् चिन्तन करके इस रहस्य को स्पष्ट किया और गीता से ही धर्म के तीन आदर्श नाम आर्य, सनातन और हिन्दू दिये, जिससे मनुष्य चाहकर भी न भटक सके।

गीता के आरम्भ में ही भगवान श्रीकृष्ण ने कहा–

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥ *(गीता, 2/2)*

अर्जुन! तुझे इस विषम स्थल में यह अज्ञान कहाँ से उत्पन्न हो गया? न यह कीर्ति बढ़ाने वाला है, न कल्याण करने वाला है, न ही पूर्व वरिष्ठ महापुरुषों ने भूलकर इसका आचरण ही किया। **'अनार्यजुष्टम्'–** यह अनार्यों का आचरण तुमने कहाँ से सीखा? गीता आर्य-संहिता है, जिसमें है

कि सिवाय आत्मा के किसी का अस्तित्व नहीं है। जो उस परमात्मा के प्रति निष्ठावान है 'आर्य' है। उस आत्मा को विदित करने की विधि (गीतोक्त-विधि – योग-विधि) यज्ञ को जो आचरण में ढालता है वह आर्यव्रती है और इसके परिणाम में जिसकी आत्मा विदित है, जो आत्मतृप्त है, दर्शन, स्पर्श और आत्मस्थिति पा जाता है वह आर्यत्व प्राप्त है।

सनातन-धर्म– गीता का प्रारम्भ ही सनातन-धर्म से होता है। दोनों ही सेनाओं में अपने परिजनों को देखकर अर्जुन ने कहा– गोविन्द! इन्हें मारकर मैं कैसे सुखी होऊँगा। ऐसा युद्ध करने से सनातन-धर्म नष्ट हो जायेगा। भगवान ने पूछा– क्या है सनातन धर्म? अर्जुन ने बताया– '**कुलधर्माः सनातना**', '**जातिधर्माश्चशाश्वताः**'; पिण्डोदक क्रिया लोप हो जायेगी, पितर गिर जायेंगे, कुल की स्त्रियाँ दूषित हो जायेंगी, वर्णसंकर पैदा होगा, जो कुल और कुलघातियों को नरक में ले जाने के लिए ही होता है। जिसे अर्जुन धर्म-धर्म कहता रहा, भगवान ने कहा– अरे! तुझे यह घोर अज्ञान कहाँ से उत्पन्न हो गया। अर्जुन का जो प्रश्न था, आज का भारत उसी को उत्तर मानकर चल रहा है; जातिधर्म, कुलधर्म, पिण्डोदक क्रिया ही तो कर रहा है। रात-दिन और क्या कर रहा है? स्व-स्व धर्म का पालन करो – जाति-परम्परा में जिसको जो मिला है उसी का पालन ही तो कर रहा है। अर्जुन तो सीख गया, किन्तु पीछेवाली पीढ़ी आज भी जहाँ की तहाँ खड़ी है।

अर्जुन ने सविनय कहा– प्रभो! आप ही बताइये कि सत्य क्या है? भगवान ने कहा–

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ *(गीता, 2/16)*

अर्जुन! सत्य वस्तु का तीनों कालों में अभाव नहीं है, उसे मिटाया नहीं जा सकता। असत् का अस्तित्व नहीं है, उसे किसी प्रकार रोका नहीं जा सकता। क्या है वह सत्य और असत्य? इस पर भगवान ने बताया कि अर्जुन! आत्मा ही सत्य है और भूतादिकों के शरीर नाशवान हैं। शरीरों के

ही उतार-चढ़ाव, ऊँच-नीच को आज लोग धर्म मान बैठे हैं। अर्जुन! आत्मा ही सनातन है।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥ *(गीता, 2/24)*

आत्मा अच्छेद्य है, इसे शस्त्र नहीं काट सकता, अग्नि इसे जला नहीं सकती, वायु सुखा नहीं सकता, जल इसे गीला नहीं कर सकता। यह सदा रहने वाला एकरस और सनातन है। सनातन केवल आत्मा है। आत्मा, परमात्मा, ईश्वर– ये पर्यायवाची शब्द हैं। यह अन्तःकरण में सदा विद्यमान होने से आत्मा, सबमें रहते हुए सबसे परे है इसलिए परमात्मा, स्वर के निरोध काल में विदित होने से ईश्वर– ऐसे हजारों नाम हो सकते हैं। यह तो प्रार्थना है, चरित्र-चिन्तन है। इस आत्मा के प्रति जो श्रद्धावान है वही सनातनधर्मी है। यदि हम आत्मा के प्रति श्रद्धावान नहीं, उस परमतत्त्व परमात्मा के प्रति समर्पित नहीं हैं तो हम भटके हुए हैं, धार्मिक नहीं!

ईश्वर का निवास-स्थल– मान लिया उस आत्मा का ही अस्तित्व है, वही सनातन है। वह सनातन ज्योतिर्मय प्रभु रहता कहाँ है? भगवान बताते हैं–

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्॥ *(गीता, 13/17)*

वह ज्योतियों का भी ज्योति है, अंधकार से अत्यन्त परे वह पूर्ण ज्ञानस्वरूप है, पूर्ण ज्ञाता है, जानने योग्य है, **'ज्ञानगम्यं'–** ज्ञान के द्वारा सबके लिए सुलभ और **'हृदि सर्वस्य विष्ठितम्'–** वह सनातन आत्मा हृदय में रहता है। जिन्हें हमें प्राप्त करना है उनका निवास बैकुण्ठ में नहीं, आकाश में नहीं, हृदय में है। हिन्दू शब्द भगवान के स्थान का वाचक है। उस हृदयस्थ ईश्वर का उपासक होने से हम हिन्दू कहे जाते हैं। हृदय में बैठकर भगवान करते क्या हैं? इस पर कहते हैं–

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्॥ *(गीता, 15/15)*

सबके हृदय में समाविष्ट मुझसे ही बुद्धि, स्मृति, ज्ञान और विकारों से निर्लेप रहने की क्षमता होती है। यह साधारण बुद्धि नहीं बल्कि वह बुद्धि जो भगवान को धारण कर ले। 'ज्ञान' दर्शन के साथ मिलनेवाली अनुभूति है। विकारों से निर्लेप रहने की क्षमता हृदय में बैठकर ईश्वर प्रदान करते हैं। इसी हृदयस्थ ईश्वर का उपासक होने से आप हिन्दू हैं।

गीता के समापन पर भगवान अपनी ओर से पुनः स्पष्ट करते हैं– अर्जुन! जानते हो कि ईश्वर का निवास कहाँ है?–

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥ *(गीता, 18/61)*

अर्जुन! वह ईश्वर सभी प्राणियों के हृदय-देश में निवास करता है। इतना समीप कि हमारे हृदय में है तो हम उसे देखते क्यों नहीं? भगवान बताते हैं कि मायारूपी यन्त्र में आरूढ़ होकर लोग भ्रमवश भटकते ही रहते हैं इसलिए नहीं देखते। जब ईश्वर हृदय में ही है तो हम शरण किसकी जायँ? भगवान अगले श्लोक में ही आदेश देते हैं–

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥ *(18/62)*

अर्जुन! उस हृदयस्थित ईश्वर की शरण जाओ, **'सर्वभावेन'**– सम्पूर्ण भावों से जाओ। ऐसा नहीं कि थोड़ा भाव संकटमोचन में, कुछ पशुपतिनाथ में, कुछ देवी में.... तब तो हम भटक गये। मन-क्रम-वचन से भली प्रकार समर्पित होकर जाओ। मान लें, हमने सारी मान्यताओं से चित्त समेटा और हृदयस्थ ईश्वर की शरण में चले ही गये तो उससे लाभ क्या है? भगवान कहते हैं– अर्जुन! **'तत्प्रसादात्परां शान्तिम्'**- तुम उसके कृपाप्रसाद

से परमशान्ति को प्राप्त कर लोगे और **'स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्'**– उस निवास-स्थान को पा जाओगे जो शाश्वत है, एकरस है, सनातन है, अपरिवर्तनशील है, जो सदैव रहेगा। उस हृदयस्थ ईश्वर की शरण जानेवाला ही हिन्दू है। हिन्दू शब्द ईश्वर के निवास का परिचय देता है।

हिन्दुत्व की साधना हृदय में ईश्वर की जागृति के साथ आरम्भ होती है। ज्यों-ज्यों संयम सधता जाता है, उसी स्तर के अनुरूप हृदय में ईश्वरीय निर्देश मिलता जाता है। यह पढ़ाई भगवान स्वयं पढ़ाते हैं। हर व्यक्ति के अपने अनन्त संस्कार हैं। सबकी अलग-अलग मनोदशा और अलग-अलग अनन्त वृत्तियाँ हैं। उन वृत्तियों के अनुरूप साधक को भगवान की ओर से प्रतिदिन, प्रतिपल निर्देश मिलते रहते हैं। सबके निर्देशों को लिपिबद्ध नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए, साधक को कैसे रहना है?, कब भोजन करना है?, किसका भोजन करना है, किसका नहीं करना है?, क्या खाना है और क्या नहीं?, क्या पहनना है?, कहाँ उठना-बैठना-चलना है?, कब सोना, कब जागना है?, कब भजन करना है और कैसे भजन करना है– बैठकर या चलित ध्यान द्वारा?..... इत्यादि प्रत्येक गतिविधि भगवान स्वयं नियन्त्रित करने लगते हैं। कभी जिस वस्तु का प्रयोग मना था, बाद में उसी को करना पड़ सकता है। भगवान की इन आज्ञाओं का पालन ही भजन है। हर व्यक्ति की साधना का स्तर अलग-अलग होता है। किसी को इन्द्रियों का संयम करना है, किसी को युक्ताहार विहार की आवश्यकता है, किसी को चिन्तन में समय देना है तो कोई सेवा स्तर पर है। सबके लिए एक जैसी साधना नहीं हो सकती इसीलिए यह साधना लिखने में नहीं आती। यही कारण है कि प्राचीन महापुरुषों ने आर्ष ग्रन्थों में हिन्दू शब्द का प्रयोग नहीं किया। हिन्दू नामकरण साधना का क्रियात्मक पक्ष है। यह प्रत्यक्ष दर्शन है, क्रियाजन्य है जो किसी अनुभवी सद्गुरु के संरक्षण में चलकर ही पूरा होता है।

सृष्टि में जो भी उस ईश्वर को ढूँढ़ेगा, हृदय में ही पायेगा। इसलिये मानवमात्र जो भी हृदयस्थ ईश्वर का आराधक है, सब हिन्दू हैं। अन्यत्र ढूँढ़ने

पर भी ईश्वर नहीं मिलेगा। संसार का भटका हुआ मानव भटकाव से ऊपर उठकर जब भी ईश्वर की ओर उन्मुख होता है, हृदयस्थ ईश्वर की ही शरण जाता है इसलिए वह सभी हिन्दू हैं। उनका रहन-सहन, वेशभूषा, पर्व-उत्सव तो गुरुघरानों की पहचान हैं। सृष्टि का प्रत्येक मनुष्य ईश्वर के प्रशस्त पथ पर आते ही हिन्दू हो जाता है – भले ही वह अपने को कुछ भी कहता या मानता रहे। जब तक वह शरण में नहीं आता, मोह-निशा में आक्रान्त है और ज्योंही वह हृदयस्थ ईश्वर की शरण आता है, वह हिन्दू है। यह नाम अन्य किसी की देन नहीं, आदिशास्त्र गीता की ही निष्पत्ति है।

वेद, उपनिषद, महाभारत, पुराण तथा ब्राह्मणगाथाओं में अथवा ब्रह्मचिन्तकों ने या गीता में इस हिन्दू शब्द का प्रयोग नहीं किया क्योंकि गीतोक्त साधना करके परमात्म–पद को प्राप्त करते ही प्राप्त करने वाला परमात्मा में स्थित हो जाता है, फिर तो परमात्मा का जो स्वरूप है कि वह अनिर्वचनीय है, अमूर्त है, कण-कण में व्याप्त है, ज्योतिर्मय है, सर्वत्र से देखता है, सर्वत्र सुनता है, सर्वत्र हाथ-पैरवाला है; भक्त भी उसी स्थिति में समाहित होकर स्थित हो जाता है। न भक्त अलग रह जाते हैं न भगवान, तो कहे कौन! इसीलिए साधनात्मक हिन्दू शब्द कहने में नहीं आता। परमात्मा में जो स्थित है, वही जानता है। हिन्दू एक अनुभूति है। यह वाणी का विषय नहीं है। महापुरुष चाहते हैं कि साधक स्वयं चले, साक्षात् करे और उसी स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाय; न कि केवल वाक्विलास में अनुरक्त हो।

अर्जुन बचपन से साथ रहता था। आत्म-जागृति की विधि और साधन-पद्धति भगवान ने बहुत समझाया किन्तु अर्जुन तर्क पर तर्क करता रहा। एकादश अध्याय में उसने प्रार्थना की कि आपकी विभूतियों को मैं प्रत्यक्ष देखना चाहता हूँ। भगवान सर्वत्र फैले अपने तेज इत्यादि को दिखाने लगे किन्तु अर्जुन को कुछ दिखाई नहीं पड़ा। सहसा भगवान रुक गये और बोले– अर्जुन! इन चक्षुओं से तू मुझे नहीं देख सकता। अब मैं तुझे वह दृष्टि देता हूँ जिससे तू मुझे देख सकेगा। जहाँ दृष्टि मिली, भगवान तो सामने ही थे।

नहीं थी तो दृष्टि। दृष्टि-संचार हुआ तो अर्जुन लगा थर-थर काँपने, रोमांच हो गया, कण्ठ अवरूद्ध हो गया, लगा स्तुति करने। यह है अनुभूति! परमात्मा के प्रत्यक्ष दर्शन के साथ महापुरुष का जब वही स्वरूप हो गया तो कहे कौन? परमात्म भाव को प्राप्त होकर वह परमात्म स्वरूप में स्थित हो गया इसलिए साधनात्मक हिन्दू शब्द का प्रयोग महापुरुषों के साहित्य में व्यक्त नहीं हुआ।

हिन्दू शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है। 'ही' हिय अर्थात् हृदय और इन्दु अर्थात् चन्द्रमा! चन्द्रमा का क्षीण प्रकाश ज्योतिर्मय ईश्वर की उपस्थिति का द्योतक है। हिन्दू शब्द इस तथ्य का परिचायक है कि भगवान आपके हृदय में विद्यमान हैं। नास्तिक, जो भगवान को नहीं चाहता, उसके हृदय में भी भगवान भली प्रकार हैं।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। *(गीता, 2/69)*

इस जगत्रूपी रात्रि में सभी प्राणी निश्चेष्ट पड़े हुए हैं, इसमें संयमी पुरुष जग जाते हैं। गीतोक्त साधना समझकर जहाँ किसी ने अभ्यास किया, संयम सधा, तहाँ वह जीव तत्काल जग जाता है। ऐसी मोह-निशा में भी भगवान क्षीण प्रकाश के रूप में हर व्यक्ति के हृदय में सदैव विद्यमान रहते हैं। रात्रि में तो चन्द्रमा ही प्रकाश करता है। संयम और चिन्तन पार लगते ही रात्रि का अवसान होता जाता है, ईश्वरीय प्रकाश फैलने लगता है। रात्रि गयी तो चन्द्रमा का कोई उपयोग नहीं रह जाता। ईश्वरीय क्षीण प्रकाश पूर्ण प्रकाश में परिवर्तित हो जाता है।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं– **'न तद्भासते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।'** *(गीता, 15/6)*– वहाँ न चन्द्रमा प्रकाश कर सकता है, न सूर्य और न अग्नि ही; इसलिए ईश्वरीय प्रकाश जहाँ फैला तो रात्रि का अवसान हो गया, साधक हृदयस्थ ईश्वर को प्राप्त कर लेता है। अस्तु, इन्दु जो क्षीण प्रकाश है, ज्योतिर्मय परमात्मा के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

हिन्दू शब्द परमात्मा के निवास-स्थान और हृदयस्थ ईश्वर की गोपनीय साधना का परिचायक शब्द है और गीताशास्त्रसम्मत है जैसा कि गीता में इस

साधना को 'गुह्यतमं' *(गीता, 15/20)* कहा गया है। इसी प्रकार आर्य न कहीं से आता है, न कहीं जाता है। अस्तित्व के प्रति निष्ठावान हुए तो आर्य, और जब तक नहीं हैं तब तक अनार्य! परमात्मा ही सनातन है। सनातन के प्रति श्रद्धावान सनातनधर्मी है।

समाज में जो देवी-देवता पूजा चल रही है, परमार्थ-पथ की शुरुआत यहीं से होती है। यह शिशु को वर्णमाला ज्ञान सिखाने जैसा है कि 'क' से कमल या 'ए' फार एप्पल! शिक्षा की कुछ दूरी सम्पन्न होते ही यह पाठ समाप्त हो जाता है। गीतोक्त साधना के प्रशस्त पथ पर इसी ने पहुँचाया है। अचेत आत्मा को जगाने के लिए, परमात्मा का रहस्य प्रकट करने के लिए रासलीला, रामलीला, कथा, कीर्तन, नृत्य, गायन चित्रकथा की तरह धर्म की खुली पुस्तक हैं। भगवान से श्रद्धा जोड़ने, अचेत आत्माओं को जगाने के लिये हैं। यह सभी 'भजन' के ही अन्तर्गत हैं।

मन्दिर, मस्जिद, चर्च और प्रार्थना-स्थलियाँ अध्यात्म की आरम्भिक पाठशालायें हैं। वस्तु-पूजा, प्रतीक-पूजा, पुस्तक या लाकेट-पूजा, दीवाल या चबूतरा पूजन मूर्तिपूजा के ही विभिन्न रूप हैं। अधिकांश मन्दिर, मूर्तियाँ पूर्वज महापुरुषों के स्मृति-स्थल ही तो हैं। बालक पहले इन स्थलियों पर सिर झुकाना सीखता है, तो कभी वृक्ष-पूजन अपनाता है; वृक्ष स्वयं में एक मन्दिर है, जिसमें ईंट-पत्थर जोड़ने की भी आवश्यकता नहीं रहती। माता-पिता और गुरुओं से आरम्भिक पाठ पढ़कर वयस्क होते-होते वह महात्माओं के संसर्ग में आता है। क्रमशः परिपक्व होने पर उनसे प्रश्न-परिप्रश्न कर वह एक परमात्मा की शरण में जाते ही गीतोक्त साधन-पथ पर आ जाता है और हृदयस्थ परमात्मा की शोध में संलग्न हो जाता है।

रामचरितमानस भी आदिशास्त्र गीता का ही अनुवाद है–

जप तप नियम जोग निज धर्मा। श्रुति संभव नाना सुभ कर्मा।।
ज्ञान दया दम तीरथ मज्जन। जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन।।
आगम निगम पुरान अनेका। पढ़े सुने कर फल प्रभु एका।।

तव पद पंकज प्रीति निरन्तर। सब साधन कर यह फल सुन्दर॥

(मानस, 7/48/1-4)

जप, तप, नियम, योग, तीर्थों का अवगाहन– ये सब श्रुतिसम्मत धर्म हैं। पुस्तक पढ़ना आदि का फल केवल एक उन प्रभु के चरण-कमलों में प्रीति है। हृदयस्थ ईश्वर तक पहुँचने के ये सब आरम्भिक साधन हैं। मंदिर, मस्जिद इत्यादि माध्यमों को गोस्वामी तुलसीदास इन शब्दों में प्रस्तुत करते हैं–

तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग बिराग ग्यान निपुनाई॥
नाना कर्म धर्म ब्रत दाना। संजम दम जप तप मख नाना॥
भूत दया द्विज गुर सेवकाई। बिद्या बिनय बिबेक बड़ाई॥
जहँ लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरि भगति भवानी॥

(मानस, 7/125/4-7)

उपर्युक्त सभी साधन वेदवर्णित हैं। जब अपना प्रकाश देने की स्थिति में आते हैं तो एक हरि की भक्ति प्रदान करते हैं।

सब कर फल हरि भगति सुहाई। सो बिनु संत न काहूँ पाई॥

(मानस, 7/119/18)

फिर वह गीतोक्त साधना के प्रशस्त पथ पर आ जाता है, वह हृदयस्थ ईश्वर का पुजारी हो जाता है, हिन्दू है।

सृष्टि के आरम्भ में सबका आदिशास्त्र गीता थी। वह अविनाशी योग विस्मृत हो चला तो द्वापर में भगवान श्रीकृष्ण द्वारा यह गीता पुनर्प्रकाश में आयी। इसके अर्थ को लेकर भ्रान्तियाँ पनपने लगीं तो इसका यथावत् भाष्य 'यथार्थ गीता' प्रकाश में आयी, जिसे 4-6 बार पढ़ लेने पर न कोई सन्देह है, न होगा। यही हृदयस्थ ईश्वर की साधना है।

सृष्टि में मानवमात्र का एक ही धर्म है– हृदयस्थ परमात्मा को विदित करना! उसकी निर्धारित विधि भी एक ही है– गीतोक्त नियत विधि! उसकी विशेषता बताते हुए योगेश्वर श्रीकृष्ण कहते हैं–

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥ *(गीता, 2/40)*

अर्जुन! इस निष्काम कर्मयोग में आरम्भ का नाश नहीं है, सीमित फलरूपी दोष नहीं है और इसका स्वल्प अभ्यास भी महान जन्म-मृत्यु के बन्धन से उद्धार करनेवाला होता है। आप इस कर्म-पथ पर दो कदम चल भर दें तो अगले जन्म में तीसरा ही कदम आगे बढ़ेगा और पड़ेगा। जैसे कोई बीज पृथ्वी पर डाला, वह अंकुरित हो गया, दो पत्ती फूट गयी तो वह फूलेगा, फलेगा और मिलेगा। माया में कोई क्षमता नहीं कि उसे नष्ट कर दे तो साधारण मनुष्य धर्म में परिवर्तन कैसे कर लेगा?

गीता के अध्याय 6 में भगवान कहते हैं– अर्जुन! शान्त वायु वाले स्थान में दीपक की लौ सीधे ऊपर की ओर जाती है, उसमें कम्पन नहीं होता। योगी के अच्छी प्रकार जीते हुए चित्त की यही परिभाषा है। उसकी वृत्ति शान्त स्थिर तैलधारावत् बाँस की तरह खड़ी हो जाती है। वृत्ति श्वास में समाहित हो जाती है। श्वास आई तो ओम्, गयी तो ओम्! बीच में दूसरा कोई संकल्प न आया, न टकराया। अर्जुन थोड़ा चौंका। वह बोला– प्रभो! इस मन को तो मैं वायु से भी तेज चलनेवाला समझता हूँ। इसका रुकना तो लगभग असम्भव है। अतः शिथिल प्रयत्नवाला श्रद्धावान पुरुष आपको न प्राप्त होकर किस दुर्गति को प्राप्त होता है? कहीं छिन्न-भिन्न बादल की तरह नष्ट-भ्रष्ट तो नहीं हो जाता? छोटी-सी बदली आकाश में आई, न बरस पायी न बादलों से ही मिल पायी और देखते ही देखते हवा के झोंकों से नष्टप्राय हो गयी, विलुप्त हो गयी। इसी प्रकार वह पुरुष भी बेचारा न संसार में भोग भोग पाया न आपको ही प्राप्त कर सका। कहीं वह नष्ट-भ्रष्ट तो नहीं हो जाता?

भगवान ने बताया–

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥ *(गीता, 6/35)*

अर्जुन! निःसन्देह यह मन वायु से भी तेज चलनेवाला और निरोध

करने में दुष्कर है, किन्तु साधना समझकर अभ्यास और देखी-सुनी वस्तुओं में लगाव का त्याग अर्थात् वैराग्य के द्वारा यह भली प्रकार स्थिर हो जाता है। इस गीतोक्त कर्म को करनेवाला कभी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता। इस साधन के प्रभाव से वह पुण्यवानों के लोक में अथवा पवित्र योगीकुल में जन्म लेता है। वहाँ विषयों में आकण्ठ डूबा होने पर भी पिछले जन्म के बुद्धिसंयोग को अनायास ही प्राप्त कर लेता है, उसी साधना को आगे बढ़ाता है और '**अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।**' *(गीता, 6/45)*– अनेक जन्मों के साधन के परिणाम में वहीं पहुँच जाता है जिसका नाम परमगति, परमधाम है। कागभुशुण्डि कई जन्मों के बाद पहुँच गये। वह कौआ हो गये लेकिन धर्म कभी नहीं बदला! जड़भरत मृग हो गये लेकिन धर्म नहीं बदला। भगवान महावीर कभी शेर हुए, हाथी हुए; अन्त में लक्ष्य पर पहुँच गये, धर्म नहीं बदला। धर्म कभी नहीं बदलता। धर्म को लोग जानते ही नहीं इसलिए उन्हें लगता है कि धर्म-परिवर्तन हो गया। परिवर्तन रूढ़ियों, परम्पराओं और प्रथाओं का होता है। धर्माचरण आरम्भ भर हो गया तो माया भी अवरोध नहीं डाल सकती, तो यह क्षुद्र मनुष्य रहन-सहन बदलकर धर्म-परिवर्तन कैसे कर सकता है? यह एक भ्रान्ति है और धर्मशास्त्र गीता के विस्मृत हो जाने का दुष्परिणाम है।

गीता में भगवान आश्वासन देते हैं– '**अपि चेत्सुदुराचारो**' *(9/30)*– अर्जुन! अत्यन्त दुराचारी भी यदि अनन्य भाव से मुझे भजता है तो वह साधु मानने योग्य है। अनन्य माने अन्य न! किसी भी अन्य देवी-देवता को न भजते हुए जो निरन्तर मुझे भजता है वह साधु मानने योग्य है। कौन? वही दुराचारी! क्योंकि वह यथार्थ निश्चय से लग गया है। यथार्थ जो सत्य है, तत्त्व है; उसका निश्चय वहाँ स्थिर हो गया, उसका भटकाव समाप्त हो गया है। इतना ही नहीं,

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥ *(गीता, 9/31)*

वह दुराचारी शीघ्र धर्मात्मा हो जाता है, सदा रहने वाली शान्ति को प्राप्त कर लेता है। अर्जुन! निश्चयपूर्वक ध्रुवसत्य जान कि मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता। गीतोक्त साधन ऐसा जीवन बीमा जैसा है जिसके अनुसार थोड़ा भी साधन आपको जन्म-मृत्यु के बन्धन से पार लगा देता है। तीन-चार बार गीताभाष्य 'यथार्थ गीता' पढ़ लिया, कुछ अभ्यास शुरू कर दिया, बीजारोपण हो गया तो विनाश कभी नहीं होगा। ये साधारण लोग 'मेरा धर्म', 'तेरा धर्म' करके क्या परिवर्तन करेंगे? माया का पूरा प्रकोप हो तब भी वह नष्ट नहीं होगा। इसलिए सद्गुरु की शरण होकर गीतोक्त साधना आरम्भ करें, सबको गीता प्रदान करें, धर्मान्तरण का प्रश्न सदा-सदा के लिये सुलझ जायेगा।

***प्रश्न–** महाराज जी! यदि हृदयस्थ ईश्वर का उपासक हिन्दू है तो समाधि-स्थलियों का हिन्दू धर्म में क्या स्थान है?*

उत्तर– अभी बताया तो! मंदिर, मस्जिद, चर्च, प्रार्थना-स्थलियाँ, प्रतीक-पूजा, स्तूप, दीवाल, समाधि या चबूतरा-पूजन इत्यादि अध्यात्म की आरम्भिक पाठशालाएँ हैं। इनमें हमारे पूर्वज महापुरुषों की स्मृतियाँ ही तो सँजोयी गयी हैं। इसे पुनः समझ लें।

विनय पत्रिका में गोस्वामी तुलसीदास जी जीव को सम्बोधित करते हुए कहते हैं–

जोबन जुबती सँग रँग रात्यो। तब तू महा मोह-मद मात्यो॥
ताते तजी धरम-मरजादा। बिसरे तब सब प्रथम बिषादा॥

बिसरे बिषाद, निकाय-संकट समुझि नहिं फाटत हियो।
फिरि गर्भगर्त-आवर्त संसृतिचक्र जेहि होइ सोइ कियो॥

कृमि-भस्म-बीट-परिनाम तनु, तेहि लागि जग बैरी भयो।
परदार, परधन, द्रोहपर, संसार बाढ़ै नित नयो॥

(विनयपत्रिका, 136/7)

परायी स्त्री, पराये धन की लालसा और दूसरों से द्रोह के संस्कारों को ही तुमने बढ़ाया है। मृत्यु के पश्चात् शरीर को पृथ्वी में गाड़ें, जलायें या जीव-जन्तु खा जायें, परिणाम में इस पंचभौतिक शरीर को कीड़ा, राख या विष्ठा होना पड़ेगा। ऐसा नहीं है कि शव को गाड़ने से कोई ईसाई या मुसलमान, जलानेवाले हिन्दू और पशु–पक्षी खा गये तो पारसी (ईरानी) हो गये। यह तो नश्वर शरीर की अनिवार्य गति है। इससे न तो कोई मुसलमान हो जाता है न तो कोई हिन्दू। भारतीय मनीषियों ने यहीं निर्णय दिया है कि मरने पर शरीर या तो कृमि होगा, भस्म होगा या बीट हो जायेगा। इतने नश्वर शरीर के पीछे आपने संसार को बाँट रखा है, दुश्मन बना रखा है जिसका परिणाम नर्क है। इसीलिए भारतीय मनीषियों ने नश्वर शरीर से परे अमृत आत्म-तत्त्व को खोज निकाला जिसे विदित कर लेने से शरीररूपी वस्त्र से, जन्म-मृत्यु के बन्धन से छुटकारा मिल जाता है।

वस्तुतः जन्म-मृत्यु के बन्धन में जकड़ा हम सबका शरीर संस्कारों पर आधारित है। यदि एक भी संस्कार शेष है तो एक जन्म और लेना पड़ेगा। अन्तिम संस्कार समाप्त होने के साथ ही शरीर धारण करने की विवशता से मानव मुक्त हो जाता है। आत्म-तत्त्व को विदित कर लेने वाला अर्थात् परमात्मा की प्राप्तिवाला महापुरुष उसी पल शरीर का त्याग कर देता है जिस क्षण उसे परमात्मा का दर्शन होता है। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि मुझे तत्त्व से जाननेवाला मुझमें ही स्थित हो जाता है (गीता, 18/55)। उन महापुरुषों में शेष बचता है ज्योतिर्मय परमात्मा जो कण-कण में व्याप्त है, सर्वव्यापी है, अनन्त है, असीम है, अमूर्त और अरूप है। इसीलिए प्राप्तिवाले सन्त और भगवन्त में अन्तर नहीं रहता। हाँ, उन परमात्मा के साथ समत्व की स्थितिप्राप्त महापुरुष, जिन्होंने कैवल्य-पद प्राप्त कर लिया है, अवतार की श्रेणी में आ गये हैं, उनके महाप्रयाण के पश्चात् उनका समाधि-स्थल बनाये जाने की परम्परा है जिससे आने वाली पीढ़ियाँ उनसे आशीर्वाद लें, प्रेरणा प्राप्त करती रहें जैसा कि आपके रामदेवरा में परमपूज्य रामदेव जी महाराज

की स्थली है। इन महापुरुषों के पास नश्वर शरीर को लेकर भेदभाव होता ही नहीं।

परमात्मा में स्थितिवाले ऐसे महापुरुष सूक्ष्म शरीर से सदैव रहते हैं। जहाँ श्रद्धा से आपका उनसे सम्बन्ध जुड़ा, उनका आशीर्वाद आपको मिलने लग जाता है। वह आपको आपके समकालीन उन सन्त के पास पहुँचा देंगे जिनके दर्शन, सेवा और निर्दिष्ट साधना से गीतोक्त साधना जागृत हो जाती है। वर्तमान के वे सन्त उन पूर्व महापुरुष का ही स्वरूप होते हैं। देवी-देवता, मूर्ति-मजार, स्तूप किंवा समाधि-स्थलियों में श्रद्धा एक न एक दिन आपको शरीरधारी जीवित जाग्रत स्वरूपस्थ महात्मा तक पहुँचा देती है जिनकी कृपा से साधना जागृत होते ही व्यक्ति हृदयस्थ ईश्वर की गीतोक्त साधना के प्रशस्त पथ पर अग्रसर हो जाता है।

!! बोलिये श्री सद्गुरुदेव भगवान की जय !!

सम्पूर्ण विश्व में यदि कोई भी व्यक्ति गीतोक्त विधि का आचरण करता है तो वह सच्चा साधक हिन्दू है; चाहे वह अपने को किसी देश, सम्प्रदाय, स्थिति अथवा परिस्थिति का मानता हो। अतः आर्य, सनातन और हिन्दू शब्द सम्पूर्ण विश्व के मनुष्यों के कल्याण के लिए सुलभ एवं उपलब्ध है। **'इति गुह्यतमं शास्त्रम्'**– यह गीता गोपनीय से भी अति गोपनीय शास्त्र है, जो सम्प्रदाय और मज़हबों से भी ऊपर है।

ॐ

* आर्य, सनातन, हिन्दू-धर्म *

सृष्टि के आदि धर्मशास्त्र 'गीता' से ही धर्म के तीन आदर्श नाम–
आर्य, सनातन और हिन्दू को लिया गया है।
तीनों का आशय एक ही है जो गीता की एक निर्धारित साधना-विधि है।
जिसे नीचे दर्शाया गया है–